ग्राम्य समाज की सौंदर्यात्मक संस्कृति

*** डा0 सत्या मिश्रा**

ग्रामीण सामाजिक संरचना, उसकी संस्कृति, संघर्षों, स्वप्नों, आकांक्षाओं एवं वास्तविक स्वरूप को समझने हेतु ग्रामीण समाज की सौंदर्यात्मक संस्कृति का अध्ययन अवश्य है। इसके विश्लेषण द्वारा ग्रामीण सामाजिक जीवन की वास्तविक ऐतिहासिक संरचना को समझा जा सकता है।

ग्रामीण सौंदर्यात्मक संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहने वाली कथाओं, पौराणिक उपाख्यानों, लोकगीतों, लोक कथाओं, कहावतों, नृत्यकला, नाटकों, मूक अभिनयों तथा चित्र एवं मूर्ति कलाओं का मिश्रण है, जिसमें प्रत्यक्ष अथवा प्रतीकात्मक रूप से ग्रामीण जनता के जगत–सम्बन्धी पर्यवेक्षण (विश्व–दृष्टि), सामाजिक धारणायें तथा नैतिक नियम निहित होते हैं अपने क्रमिक उद्भव एवं विकास के अनुरूप। सौंदर्यात्मक संस्कृति समाज की सम्पूर्ण संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। यह कला के माध्यम से जनता के आदर्शों, आकांक्षाओं, स्वप्नों, मूल्यों तथा प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करती है, जिस प्रकार उसकी बौद्धिक संस्कृति, जो उसे सर्वतः आच्छादित किये हुए है, प्राकृतिक एवं समाजिक जगत के ज्ञान को प्रदर्शित करती है। अनेक प्रसिद्ध समाजशास्त्रियों ने कुछ प्रमुख कलाओं की गणना की है जिनमें ग्रामीण समाज की सौंदर्यात्मक संस्कृति के तत्व निहित हैं यथा :–

1. चित्रमय कलायें; जैसे आलेखन, चित्रकला, नक्काशी तथा अन्य द्वि–आयामी रूप वाली कलायें।
2. मूर्ति कलायें; जिनमें ''पदार्थों का उपयोग त्रिआयामी रूप ढालने अर्थात् त्क्षण एवं ऊँचे–नीचे, गोल ढांचे में ढालने हेतु किया जाता है।'' वे कलायें सम्मिलित हैं।
3. लोक कथा; इनमें पुराण कथायें, आख्यायिकायें, कहावतें, पहेलियां, संगीतमय पद्य सम्मिलित हैं।

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, नारी शिक्षा निकेतन पी0जी0 कालेज, लखनऊ।

4. नृत्य तथा नाटक; जिनमें चित्रमय, मूर्ति तथा लोक कथायें तीनों ही सम्मिलित हैं, अतः वे सामासिक कलायें हैं।

हर्षकोविट्स, सोरोकिन, ज़िम्मरमेन, गेल्पिन, भारत में ए0आर0 देसाई, मजूमदार तथा अन्य अनेक ग्रामीण समाजशास्त्रियों ने भरण–पोषणात्मक अर्थतंत्र पर आधारित ग्राम्य समाजों की सौदंर्यात्मक संस्कृति के कुछ विशिष्ट लक्षणों का उल्लेख किया है। ये लक्षण निम्नांकित है :–

1. कला, धर्म, जादू–टोना, बौद्धिक क्रिया कलापों, दिन–प्रतिदिन के कार्यों, कृषि कर्म एवं सांस्कृतिक क्रियाओं में अविच्छिन्न रूप से अन्तर्निहित रहती हैं।
2. कलात्मक क्रियाओं में सम्पूर्ण ग्रामीण जनों की सहभागिता होती है, आधुनिक समाजों की भाँति श्रोता–समूह एवं कलाकारों में भेद नहीं होता। सभी स्त्री–पुरूष, बालक–बालिकायें इसमें सहभागी होते हैं। अभिनेता एवं दर्शक के रूप में इन्हें पृथक नहीं किया जा सकता। यद्यपि कुछ व्यावसायिक कलाकार प्राचीन काल से पाये जाते रहे हैं तथापि उनकी संख्या बहुत कम होती रही है।
3. गांवो में कला का स्वरूप मुख्यतः पारिवारिक होता है। कला ग्रामीण जीवन में ओत–प्रोत रहती है, जिस पर परिवारवाद की छाप अंकित रहती है।
4. ग्रामीण समाजों में परम्परागत रूप से कला की तकनीक सरल होती है। ग्रामीण कला के उपकरण ग्रामीण शिल्प–उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तुएं होती हैं। ये उपकरण प्रायः घर में ही निर्मित कर लिये जाते हैं। साधारण ढोल (नगाड़ा, ढोलक, डफ, खंजरी, नौबती), साधारण बाँस या लकड़ी की बनी बांसुरी, इकतारा, रावण हत्था जैसे तारवाले, साधारण ढांचे वाले यंत्र, सरल रचना शैली के धातु निर्मित यंत्र यथा–घड़ियाल, घंटी, मंजीरा, लकड़ी के यंत्र जैसे करताल, घरेलू उपयोग के बर्तन जैसे–थाली, गागर, लोटा,

चिमटा, कतिपय प्राकृतिक वस्तुयें यथा–वृक्षों की शाखायें, पक्षियों के पंख, सांप, शंख, हाथी दांत इत्यादि परम्परागत आदिम ग्रामीण समाजों में कला के पूर्वापेक्षक होते हैं तथापि कला का प्रदर्शन घरों के अहातों या गांवो के खुले स्थानों में होता रहा है।

5. कृषि ग्रामीण जीवन का आधार है, अतः कृशि जीवन की प्रक्रियायें कला की विषय सामग्री के रूप में होती है। लोक–गीतों, लोक–नृत्यों तथा लोक–कथाओं तथा त्यौहार के अवसरों पर बनाये जाने वाले रेखाचित्रों में इनका परिलक्षण होता है।

6. ग्रामीण समाज की प्रकृति से निकटता होने के कारण ग्रामीण कला पर भी प्राकृतिक वातावरण की छाप दिखायी देती है यथा पेड़–पौधे, जीव–जन्तु इत्यादि की रेखागणितीय आकृतियाँ गावों की कलात्मक रचनाओं पर उकेरी जाती हैं। विभिन्न अलंकरणों, भवनों की सजावट, हस्त–निर्मित वस्त्रों में इनकी छाप दृष्टिगत होती है।

7. ग्रामीण कला का अत्यन्त प्रबल लक्षण है कला–कृतियों का प्रमुख रूप से सामूहिक रूप से रचित होना एवं सामूहिकता के भाव से ओत–प्रोत होना। ग्रामीण गीत, कहानियां, नाटक, कला–कृतियां ग्रामीण कलाकारों की पीढ़ियों की सामूहिक रचनायें होती हैं। अतः अधिकांशतः ये अपने मूल में बिना लेखक के नाम की रचनायें होती हैं। ग्रामीण सामाजिक कला में गहन स्वाभाविकता, सरलता एवं सहजता निहित है, जिसमें समष्टि के भाव, आनन्द, आकांक्षायें तथा स्वप्न प्रबल रूप से प्रकट होते हैं। चूंकि ग्रामीण कला असंख्य पीढ़ियों की भावनाओं एवं जीवन की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करती है फलतः यह अधिक पूर्ण एवं स्थायी है।

8. परम्परागत रूप से ग्रामीण कला का स्वरूप अव्यावसायिक है। ग्रामीण कलाकार अपनी कलात्मक रचनाओं से लाभ–उपार्जन की भावना से प्रेरित नहीं होता वह कलात्मक उद्देश्य से अनुप्राणित

होता है। बाजारवाद तथा पूंजीवाद, नगरीकरण इत्यादि के कारण ग्रामीण कला का व्यवसायीकरण तीव्र गति से प्रारम्भ हो गया है।

9. कलात्मक शिल्पकारिता तथा संस्कृति का पीढ़ी दर पीढ़ी प्रायः मौखिक रूप से हस्तान्तरित होना ग्रामीण कला का मौलिक लक्षण है। परिवारों के वरिष्ठजन लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाओं एवं हस्तशिल्प का प्रशिक्षण अल्प वयस्कों को प्रदान करते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में ग्रामीण सामाजिक सौंदर्यात्मक संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर दृष्टिपात किया गया है तथापि परम्परागत ग्रामीण समाज में परिवर्तन ला रही प्रक्रियाओं ने ग्रामीण कला के स्वरूप को भी परिवर्तित कर दिया है। मूल रूप से सौंदर्यात्मक संस्कृति में परिवर्तन की प्रवृत्तियां ब्रिटिश लोगों के भारत में आगमन से प्रारम्भ हुईं। कला ग्रामीण समाज में अब सामूहिक क्रिया न होकर विशिष्ट क्रिया बनती जा रही है। कला की परम्परागत तकनीक समाप्तप्राय हो गई है और इसका स्वरूप जटिल होता जा रहा है। कलात्मक सृजन का मुख्य लक्ष्य आर्थिक लाभ उत्पन्न करना होता जा रहा है। कला धीरे–धीरे सामूहिक जीवन से पृथक होती जा रही है और कला के अनेक तत्व मौखिक होने के कारण धीरे–धीरे समाप्त हो चुके हैं। आधुनिक–औद्योगिक कलात्मक यंत्रों, नगरीकरण, बाजारवाद, प्रौद्योगिकीय विकास ने ग्रामीण सौंदर्यात्मक संस्कृति के मूल स्वरूप को परिवर्तित कर दिया है। फलतः परिवर्तनशील ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने हेतु गावों की सौंदर्यात्मक संस्कृति का गहन अध्ययन आवश्यक हो गया है। भारतीय समाज की संस्कृति विविधतायुक्त है अतः ग्रामीण सौंदर्यात्मक संस्कृति में भी क्षेत्रीयता एवं विशिष्टता पाई जाती है, इसलिए इनका श्रेणी विभाजन करके प्रत्येक इकाई का अलग–अलग अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

भारतीय ग्रामीण समाज के सौंदर्यात्मक तत्वों का गहन विवेचन एवं समाजशास्त्रीय अभिलेखीकरण डी0एन0 मजूमदार, एस0सी0 दुबे, श्री निवास इत्यादि ने किया है, जिनका निरूपण उनकी प्रसिद्ध कृतियों में हुआ

है। मजूमदार ने अपनी कृति 'कास्ट एण्ड कम्युनिकेशन इन एन इंडियन विलेज' में धार्मिक उत्सवों, अनुष्ठानों, फसल चक्र के विभिन्न अवसरों अर्थात् फसल के बोये एवं काटे जाने के अवसरों पर एवं मनोरंजन के साधन के रूप में विभिन्न त्यौहारों पर गाये जाने वाले गीतों का उल्लेख किया है। बृजराज चौहान ने भी अपने विविध अध्ययनों में ग्रामीण संस्कृति के सौंदर्यात्मक तत्वों को खोजने का प्रयत्न किया है। भारतीय समाज की आरम्भिक अवस्थाओं के लिखित इतिहास के अभाव में एवं उसके पश्चात लिखित इतिहास की अपर्याप्तता होने के कारण भी ग्रामीण समाजशास्त्री के लिए सौंदर्यात्मक संस्कृति का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक बन गया है।

संदर्भ –

1. देसाई, ए0आर0 (अनु0 हरिकृष्ण रावत) : 1999, भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर।
2. दुबे एस0सी0 (अनु0 योगेश अटल) : 2000, भारतीय ग्राम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. मजूमदार, डी0एन0 : 1960, छोर का एक गांव, (अनु0 चन्द भाल त्रिपाठी), एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
4. मजूमदार, डी0एन0 : 1958, कास्ट एण्ड कम्युनिकेशन इन एन इंडियन विलेज, एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुबंई।
5. यंग किम्बाल व डब्ल्यू0 रेमंड मैक : समाज शास्त्र के सिद्धान्त (सिद्धान्त और गवेषणा), यूरेशिया पब्लिशिंग हाऊस (प्रा0) लिमिटेड रामनगर, नई दिल्ली।